पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार गाथा १३
पंच कल्याणक निर्वाण दिवस, देवलाली
तारीख २८-१२-१९८९, २९-१२-१९८९ प्रवचन LA०८४

ये पंच कल्याणक दिन का आज एक अपेक्षा से मांगलिक दिन है (कि) भगवान का मोक्ष हुआ और प्रत्येक जीव का मोक्ष हो, ये तो अनुमोदन करने योग्य है। लेकिन दिव्यध्वनि अभी हमें नहीं मिलेगी, प्रभु मोक्ष पधारे (हैं इसलिए); अरिहंत थे तब तक तो दिव्यध्वनि मिलती थी और स्वयं के स्वरूप का स्मरण-वर्णन ये सब मिलता था, इसलिए लायक मुमुक्षु जीव को आँख में, एक आँख में हर्ष और एक आँख में अश्रु - ऐसी स्थिति का आज दिन है क्योंकि निर्वाण पद की प्राप्ति हुई है। मृत्यु नहीं है, मृत्यु नहीं है। मृत्यु किसको कहते हैं? कि फिर से इधर से जाकर दूसरी चार गति में जन्म लें उसको मृत्यु कहते हैं।

ऐसा भगवान का निर्वाण का दिन है आज। तो निर्वाण जिसका हो गया, मोक्ष हो गया तो फिर से वो जन्म नहीं लेता है। मरता भी नहीं है और जन्म भी नहीं लेता है। जन्म लेवे तो मरे न! तो ये आत्मा ऐसा अनादि-अनंत मोक्ष स्वरूप है, जिसमें जन्म और मरण का भाव ही नहीं है, और जन्म-मरण का जो विभावभाव निमित्तकारण (है) वो भी स्वभाव में नहीं है। त्रिकाल मुक्त परमात्मा है। जिसको मुक्त की दृष्टि होती है तो दृष्टि-मोक्ष गृहस्थ अवस्था में हो जाता है। दृष्टि अपेक्षा से उस आत्मा (का) मोक्ष हो जाता है और दशा अपेक्षा से, पर्याय अपेक्षा से वो बाद में उसकी मुक्ति हो जाती है। मुक्त क्यों हो जाता है? भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म क्यों छूट जाते हैं? क्योंकि स्वभाव में नहीं थे, स्वभाव में नहीं थे, वो तो संयोग हैं। संयोग का अभाव होता है, स्वभाव का तीन काल में अभाव होता नहीं है। इसलिए आज के दिन एक आँख में अश्रु भी चलता है और दूसरी आँख में, आहाहा! मोक्ष पधारे हमारे प्रभु! वो हर्ष की बात है। दो आँख है न (तो) एक आँख में अश्रु है (और) एक आँख में हर्ष है।

हम भी आपके पास में अभी आयेंगे। आप पधारो, हम.... आपने जो उपदेश दिया है तो हमारा भी अल्पकाल है, लंबा काल है नहीं। भव भी अल्प और काल भी अल्प (हैं) क्योंकि हमारे आत्मा में बंध-मोक्ष का अभाव है, परिणाम मात्र का अभाव है - ऐसी दृष्टि द्रव्य पर पड़ती है तो उसको आत्मा का अनुभव होता है। अनुभव के काल में त्रिकाल स्वभाव मुक्त स्वरूपी तो दृष्टि में आ गया मगर उसके साथ जब दृष्टि प्रगट होती है, उसके साथ सम्यग्ज्ञान, श्रुतज्ञान, अतीन्द्रियज्ञान, भावश्रुतज्ञान, स्वसंवेदन ज्ञान भी प्रगट होता है। वो ज्ञान की पर्याय, भावि (भविष्य की पर्याय) को वर्तमान में जान लेती है। आहाहा! कठिन बात है हमको मालूम है सब। आहाहा! मगर क्या करें - ऐसा श्रुतज्ञान का स्वरूप है। जो द्रव्य स्वभाव को जानता है, वो भावी पर्याय को भी मोक्षस्वरूप (पर्याय को भी) अभी जान लेता है। तो अल्पकाल में स्थिरता होकर के मोक्ष की पर्याय, आठ कर्म के अभाव (रूप) नास्ति से (और) अस्ति से पूर्णानन्द का नाथ - अनंतज्ञान-अनंतदर्शन-अनंतसुख-अनंतवीर्य प्रगट हो गया। अभी

भविष्य में किसी काल में वो संसार में आनेवाला नहीं है।

संसार में क्यों नहीं आता है? कि दृष्टि का बल है इसलिए नहीं आता है। जैसे दृष्टि बलवान है ऐसा ज्ञान बलवान नहीं है क्योंकि ज्ञान सविकल्प है और दृष्टि निर्विकल्प है। दृष्टि का विषय एक ही है (और) ज्ञान का विषय उपादेय की अपेक्षा से एक है मगर जानने की अपेक्षा से भेदाभेद है; इसलिए दृष्टि बलवान है, ज्ञान बलवान नहीं है - ऐसा आत्मा का स्वरूप है।

तो आज भगवान मोक्ष पधारे। उनका कल्याणक आज हुआ। अभी १३ नंबर की गाथा समयसार की चलती है। ये तो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें लिया है (कि नवतत्त्व को) भूतार्थनय से जानना। ये आत्मा है न, आत्मा देह से सहित दिखता है, देह से सहित दिखता है; देह पर दृष्टि जिसकी है उसको आत्मा देह ही लगता है, मनुष्य लगता है, शरीरवाला लगता है, शरीर वही आत्मा है ऐसा लगता है - ये भ्रांति है। अभी भी आत्मा देह से रहित है, अभी! आत्मा को नोकर्म छूता ही नहीं है, ऐसा निरालंबी तत्त्व देह से भिन्न अंदर में परमात्मा विराजमान है। उसकी दृष्टि कर, देह का लक्ष छोड़ दे। देह को नहीं छोड़ना है, देह को छोड़ने की ताकत आत्मा की नहीं है क्योंकि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर सकता नहीं है। वो तो महासिद्धांत है। आहाहा!

आठ प्रकार का कर्म है, वो अभी संयोगरूप है मगर वो भी अभी आत्मा से भिन्न है। कि 'कथंचित् भिन्न (और) कथंचित् अभिन्न'? (ऐसा) है ही नहीं; सर्वथा भिन्न है। बात-बात में जीव कथंचित् लगाता है। जहाँ लगाना चाहिए वहाँ नहीं लगाता और जहाँ नहीं लगाना चाहिए वहाँ (लगाता है)। वो भी हेय है। प्रकृति के बंध में केवल राग निमित्त है, राग के बाजू में, जोड़े - साथ में अन्वयरूप परमात्मा ज्ञायक है वो कर्म बंध का कारण नहीं है। बिल्कुल कारण नहीं है, एक समय भी कारण नहीं है। जब राग कारण होता है तब आत्मा अकारण परमात्मा ऐसा का ऐसा रहता है - ऐसा भेदज्ञान करना चाहिए। आहाहा! आत्मा निमित्त हो गया (अरे!) आत्मा तीन काल में निमित्त नहीं होता है। पराश्रित राग निमित्त होता है। स्वाश्रित संवर-निर्जरा भी निमित्त नहीं होते हैं बंध में, तो प्रभु (तो) कहाँ से निमित्त हो? आहाहा!

ऐसे राग से भी आत्मा भिन्न है, पुण्य-पाप का लक्ष छोड़ देना। देह का लक्ष छोड़ना, कर्म का लक्ष छोड़ना, पुण्य-पाप की वृत्ती उठती है उसका लक्ष छोड़ देना। पुण्य-पाप छोड़ने की बात नहीं है, वो ताकत ही नहीं है। ग्रहण ही नहीं किया है तो छोड़े कैसे? आहाहा! आत्मा ने पुण्य-पाप को ग्रहा ही नहीं है तो छोड़े कहाँ से? आता है, जाता है पुण्य-पाप, वो ठीक है (क्योंकि) संयोग है। ऐसा उसका लक्ष छोड़कर चिदानंद भगवान आत्मा अंदर विराजमान है, उसको दृष्टि में लेने से आत्मा का अनुभव होता है और अनुभव का नाम **सम्यग्दर्शनाज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थसूत्र, प्रथम अध्याय, सूत्र १) है।

ऐसे विकल्प में, शब्द में.... आहाहा! ये नवतत्त्व का श्रद्धान (और) छह द्रव्य का ज्ञान, छह द्रव्य जैसा है ऐसा जाने (तो) वो भी सम्यग्ज्ञान नहीं, नवतत्त्व जैसा है, ऐसा जाने उसका लक्ष करके तो भी सम्यग्दर्शन होता नहीं है। नवतत्त्व से आत्मा भिन्न है। नवतत्त्व परिणामरूप है (और) आत्मा तो द्रव्यरूप है। नवतत्त्व के परिणाम में कोई भी परिणाम लो, उस परिणाम में मोक्ष की पर्याय ले लो (तो)

उसमें अनंत गुण हैं? नहीं हैं। इसलिए वो जीवतत्त्व नहीं है, मोक्षतत्त्व है। मोक्षतत्त्व और जीवतत्त्व - जीव में मोक्षतत्त्व की नास्ति है; ऐसी अस्ति भगवान की अंदर में है।

परिणाम मात्र का लक्ष छोड़कर अंदर भगवान आत्मा विराजमान है। अंतर्मुख होकर देख, देख! अरे! निरंतर दिख रहा है जानने में आ रहा है! स्वीकार कर, स्वीकार कर! आहाहा! अनादि-अनंत! कलश-टीका (कलश ८) में ऐसा आया है कि **जीव वस्तु चेतना लक्षण से जीव को** निरंतर **जानती है**। आत्मा अपने उपयोग से अपने आत्मा को निरंतर जानता है। राग नहीं जानता है आत्मा को, देह नहीं जानता है (आत्मा को) मगर जो उपयोग लक्षण है आत्मा का, उसमें भगवान आत्मा का निरंतर दर्शन होता है। आहाहा! दर्शन देता है मगर वो लेता नहीं है।

एक बार रतिभाई घिया ने प्रश्न किया था राजकोट में कि गुरुदेव इतनी प्रशंसा करते हैं आत्मा की, प्रशंसा करते-करते थकते ही नहीं है, तो ऐसा ये आत्मा चौबीस घंटा क्या करता होगा? चौबीस घंटा आत्मा करता क्या होगा? मैंने कहा वो दर्शन देने का कार्य उसका चालू है। कभी एक समय भी दर्शन न देवे ऐसा होता नहीं है। तो हमको क्यों दिखता नहीं है? कि (वो) दर्शन देता है मगर तू दर्शन लेता नहीं है। ये भगवान की प्रतिमा है, दर्शन करने के लिए प्रतिमा इधर आएगी कि अपने को वहाँ जाना है? अपने को वहाँ जाना पड़ता है, भगवान इधर नहीं आते हैं। ऐसे (ही) प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव के अंदर.... हिन्दी में.... प्रत्येक समय, प्रत्येक जीव में उपयोग लक्षण प्रगट होता है, उसमें आत्मा जानने में आता है। जानने में आ रहा है। आहाहा! पर उसकी दृष्टि पर ऊपर है तो इंद्रियज्ञान प्रगट होता है, तो इंद्रियज्ञान (तो) पर की प्रसिद्धि करता है (और) स्व को तिरोभूत करता है।

इंद्रियज्ञान ज्ञान ही नहीं है, शास्त्रज्ञान ज्ञान ही नहीं है भैया! वो तो ज्ञेय है, तूने मान लिया (है) ज्ञान; मोहराजा ने कहा ज्ञान तो तूने मान लिया! सर्वज्ञ भगवान की दिव्यध्वनि में आया कि (वो) ज्ञान नहीं है, ज्ञेय है; तो ज्ञेय का ढेर होता है। जैसे पैसा का ढेर होता है न, ढगला। ऐसे शास्त्रज्ञान भी प्रभु! आत्मज्ञान ज्ञान है, शास्त्रज्ञान ज्ञान नहीं है! तो क्या शास्त्र पढ़ना नहीं? (तो) क्या करना? कि शास्त्र ऐसा बताता है कि हमारे सन्मुख जो ज्ञान हुआ वो तेरा ज्ञान नहीं है, तेरे आत्मा के सन्मुख हो वो तेरा ज्ञान है। शास्त्र ही (ऐसा) बताता है। शास्त्र क्यों पढ़ना? कि शास्त्र बताते हैं कि ये शास्त्रज्ञान तेरा नहीं है, इसलिए शास्त्र बार-बार पढ़ता हूँ। शास्त्र में लिखा है कि शास्त्रज्ञान तेरा नहीं है।

एक बार गुरुदेव ने कहा सुरेन्द्रनगर में - एक भाई ने कहा कि निमित्त कुछ करता नहीं है। तो दूसरे (भाई) ने कहा कि यदि निमित्त कुछ करता नहीं है तो आप सोनगढ़ क्यों जाते हो? गुरु (तो) निमित्त हैं न, देशनालब्धि, तो वहाँ क्यों जाते हो? उस भाई ने कहा कि इसलिए बार-बार मैं जाता हूँ कि निमित्त से कार्य होता है ऐसा मुझे भ्रम हो गया है न, इसलिए सुनने को जाता हूँ कि निमित्त से कुछ कार्य होता नहीं है। कार्य उपादान से होता है। बार-बार सुनने के लिए मैं जाता हूँ कि निमित्त से कुछ होता नहीं है।

निमित्त है दूसरी चीज, वो अलग है। निमित्त का नाम अकर्ता है और उपादान का नाम कर्ता है। उपादान-निमित्त दो हैं (और) कार्य अकेला उपादान से होता है - इस गाथा का मर्म है। पर्याय निरपेक्ष होती है; मिथ्यात्व की पर्याय दर्शनमोह से उत्पन्न नहीं होती है (और) आत्मा से भी उत्पन्न नहीं होती है।

निरपेक्ष है तो कर्ताबुद्धि छूटती है। और कर्ताबुद्धि छूटने से अकर्ता ऐसे आत्मा की दृष्टि होती है तो मिथ्यात्व की जगह पर सम्यग्दर्शन अपने आप (आ जाता है)। कर्ताबुद्धि किये बिना सम्यग्दर्शन सहज प्रगट हो जाता है, तो उपचार से 'कर्ता है' (ऐसा) कहा जाता है। वो उपचार भी खटकता है ज्ञानी को। आहाहा! कल बात की थी।

ऐसे १३ नंबर की गाथा में आचार्य भगवान फरमाते हैं कि नवतत्त्व निरपेक्ष हैं, भूतार्थनय से नवतत्त्व जान। व्यवहारनय से तो जाना (कि) इसका ये कारण है, इसका ये कारण है, वो कर्म के उदय से यहाँ राग होता है, राग के उदय से कर्म बंधता है - ऐसा जाना। मगर आत्मा क्या है? आहाहा! उससे भिन्न, आत्मा **द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म** से भिन्न है वो तो मांगलिक (समयसार कलश १) में कहा। भावकर्म से भिन्न कहा परंतु भगवान की भक्ति से तो भिन्न नहीं है न; तो भावकर्म में भक्ति नहीं आ गई? तो भक्ति छोड़ देना? भक्ति छोड़ने की बात नहीं है, भक्ति में आत्मबुद्धि छोड़ दे। सम्यग्दर्शन के बाद भक्ति तो ज्यादा बढ़ती है! भक्ति छूटती नहीं है। स्वरूप में लीन हुए बिना शुभभाव छूटेगा (नहीं); है तो छूटा (हुआ ही); आहाहा! मगर पर्याय में से नहीं छूटता है, द्रव्य में तो है ही नहीं। पर्याय में जितनी स्थिरता होती है उतना राग कम हो जाता है। ज्यों **ज्यों विज्ञानघन स्वभाव होता जाता है त्यों त्यों** आत्मा (की) **आस्रवों से निवृत्ति होता जाता है** (समयसार गाथा ७४)।

इसलिए १३ नंबर की गाथा में पहला पारा हुआ, अभी दूसरा पारा है। भेदज्ञान का मंत्र है, सारा समयसार भेदज्ञान से भरा हुआ है, कोई भी श्लोक (अथवा) कोई भी गाथा लो। जितने आज तक सिद्ध परमात्मा हुए वो सब भेदविज्ञान से हुए।

भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।

(समयसार आत्मख्याति टीका, कलश १३१) आता है न श्लोक।

दूसरा पारा। **बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे देखा जाये तो:-** अभी हिन्दी हो जाएगा; थोड़ा गुजराती इधर है न। **बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे देखा जाये तो:-** बहिर्दृष्टि से देखो तो - अंतर्दृष्टि से नहीं देखो, बहिर्दृष्टि से देखो तो क्या हुआ है? कि **जीव-पुद्गलकी अनादि बन्धपर्यायके समीप जाकर एकरूपसे अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं,** आहाहा! नवतत्त्व भूतार्थ कब लगता है? कि जीव और पुद्गल, जीव और अजीव की एकत्वबुद्धि होती है तब नवतत्त्व भूतार्थ लगता है। अजीव का लक्ष छोड़कर जीव का लक्ष होता है तो नवतत्त्व अभूतार्थ है, आत्मा के स्वभाव में है (नहीं)। पर्याय में भले हो मगर वो पर्याय आत्मा में नहीं है। जो पर्याय आत्मा में हो तो ज्ञायक का, सामान्य का अवलंबन करते समय राग का भी अवलंबन आना चाहिए। मगर सामान्य का अवलंबन करते समय राग का अवलंबन आता नहीं है और दुख का वेदन आता नहीं है; इसलिए परिणाम भगवान आत्मा से भिन्न है। सामान्य में विशेष की नास्ति, ऐसा अस्ति-नास्ति अनेकांत है। आहाहा! वो अनेकांत का ज्ञान दूसरी चीज (है) और अस्ति-नास्ति भेदज्ञान करने के लिए बात अलग होती है।

बन्धपर्यायके समीपजाकर एकरूपसे अनुभव करनेपर, आत्मा और अनात्मा एक है - ऐसा जो अनुभव करता है उस दृष्टि से नव का भेद, नव का भेद दिख जाता है। मगर जो जीव और अजीव का भेदज्ञान करके आत्मा के सन्मुख होता है, अजीव का लक्ष छूट जाता है, तो नव का भेद, अभेद में

दिखता नहीं है। आहाहा! भले पर्याय का भेद हो तो हो, मैं तो अभेद हूँ। अभेद, किसके साथ अभेदता है? कि अनंत गुणमय मैं आत्मा हूँ अभेद, एकत्व हूँ; ऐसे अनंत गुण से एकत्व होने पर अंदर में परिणति जाती है, चलती जाती है तो ये परिणाम भी क्षणिक अभेद हो जाता है - इसका नाम ध्येय पूर्वक ज्ञेय होता है। यानि समयसार भी आ गया और प्रवचनसार, तत्त्वार्थ सूत्र भी आ गया, धवल-महाधवल भी इसमें आ गया।

ये कैसे आया? देखो! ये परिणाम भी है और आत्मा भी है; जीव भी है और परिणाम - नवतत्त्व (भी) है; नहीं हैं - ऐसा नहीं (है)। खरगोश के सींग (जैसा) नहीं है। (वो) है, वो परिणाम भी है और उत्पाद-व्यय भी है और ध्रुव भी है। मगर उत्पाद-व्यय का लक्ष छूटता है, नव के भेद का लक्ष छूटता है और अभेद सामान्य पर दृष्टि आती है। दृष्टि का विषय दृष्टि में आते ही, दृष्टि का विषय दृष्टि में आते ही, श्रद्धा का विषय श्रद्धेय में आते ही निर्विकल्प अनुभव होता है (और) उस समय ज्ञान प्रगट होता है। वो ज्ञान प्रगट होता है, उस ही समय वो आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररुप से परिणमता है, वीतरागी भावरूप से परिणमता है तो निर्मल पर्याय से आत्मा कथंचित् अभिन्न है। रहित होने पर (भी) सहित का ज्ञान होता है। रहित का श्रद्धान (और) निर्मल पर्याय से सहित का ज्ञान। उत्पाद-व्यय से रहित ध्रुव का ध्यान और उत्पाद-व्यय सहित से ध्रुव है वो ध्याता बन जाता है। एक समय में सब काम हैं। जैसे केवली भगवान **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५, सूत्र ३०) को एक समय में जानते हैं, ऐसा (ही) छद्मस्थ हिरण, मेंढक, अनुभव के काल में (उसको) एक समय में ध्रुव का अवलंबन करते ही **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** का ज्ञान हो जाता है। वो हिरण भी प्रवचनसार पढ़ लेता है, जंगल का हिरण। आहाहा!

एक आत्मा के आश्रय से सब कार्य की सिद्धि होती है। जिसको **आत्मा की अनुभूति** हुआ (**वह निश्चय से**) **समस्त जिनशासन की अनुभूति** (समयसार गाथा १५) हो गई। **आत्मा की अनुभूति** कहो कि **जिनशासन की** (**अनुभूति** कहो); जिनशासन कहाँ है? जिनशासन बाहर में नहीं है, जिनशासन (तो) अंतर्मुख परिणाम जो अतीन्द्रियज्ञान का, सम्यग्दर्शन का होता है, अनुभूति होती है, आत्मा की अनुभूति है (**वह निश्चय से जिनशासन की अनुभूति है**)।

... है ऐसा द्रव्य स्वभाव सामान्य का अवलंबन करने से अनुभूति होती है। उस अनुभूति से आत्मा सहित है। तो अनुभूति आत्मा है कि अनात्मा है? कि आत्मा है मगर वो ज्ञेय है, ध्येय नहीं है, वो ध्यान रखना।

वो कहते हैं (कि) हाँ! पर्याय से सहित तो पहले से ही कहते थे हम। आपने तो बाद में किया। तो हम क्या खोटे हैं, झूठे हैं? आहाहा! देखो; पर्याय से सहित तो हम पहले से ही कहते थे। आप क्यों टुकड़े करते हो? **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** में दो टुकड़े क्यों करता हो? ये टुकड़े करने के बाद वो साँध (सिल) लेता है। टुकड़ा टुकड़ारूप रहता नहीं है। साँधता (सिलता) है तो भी सामान्य तो सामान्य और विशेष तो विशेष ही रहता है - दो सत्। ज्ञानप्रधान कथन से - ज्ञेय से देखो तो एक सत्ता है (और) नय से देखो तो दो सत्ता हैं। अभी नय से देखना नहीं और प्रमाण से (भी) देखना नहीं; जैसा है ऐसा ज्ञान में आ जाता है, नयपक्ष रहता नहीं है।

तो हमारे पास तो बहुत प्रश्न आता है कि **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** एक सत्ता है तो उसके दो टुकड़े क्यों करते हो? मैंने कहा कि दो टुकड़े करके बाद में सिलते हैं। दो टुकड़े करके अलग ऐसा नहीं रहता है कि वो पर्याय अलोक में भेज दे और द्रव्य को इधर रखता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! तो क्या है? तो ये दृष्टांत है। दृष्टांत सादा है मगर (सिद्धांत) समझ में आ जाता है।

मुंबई है न, मुंबई बड़ी नगरी मोहमयी नगरी है न! झवेरी बाजार में भीड़ तो ज्यादा है न। एक आदमी अकारण निकला, सोचा (कि) झब्बा (कुर्ता) है सिलाना है कुर्ता। उसकी सिलाई तो अभी १०० रुपया हो गई, तो १०० रुपया सिलाई देना नहीं है मेरे को। ऐसा (बिना) सिलाई करके पहनना है। तो सिलाई के बिना कपड़ा दो मीटर का ले लिया, निकला। पगड़ी तो गई, टोपी तो गई। खुल्ला सर तो है ही, खुल्ला माथा तो है ही। तो निकला (सबने पूछा कि) भाईसाहब! कौन गुजर गया? कौन मर गया? वो श्मशान-यात्रा कब निकलेगी? अरे भाई (ये) क्या है? क्यों भाई, आपने ये ओढ़ा है न! आहाहा! आगे गया तीसरा मिला, चौथा मिला, सबने (यही) कहा। अरे! ये तो चले नहीं, ये तो चलेगा नहीं। अभी १०० रुपया खर्च करना पड़ेगा।

कपड़ा लेकर दर्जी के पास गया, दर्जी ने कैंची उठाई। अरेरे! भाई! कैंची से काटना नहीं है। तो क्या करना है तेरे को? कि कुर्ता सिलाना है, कुर्ता। तो कैंची के बिना, टुकड़े किये बिना संधान (सिलना) होता नहीं है। अच्छा! वो समझ गया। तो काटना तो पड़ेगा, मगर मैं तूझे टुकड़े नहीं दूँगा, सिलकर दूँगा। मगर इतनी सिलाई सूक्ष्म करूँगा कि सिला हुआ होने पर भी उपलक (छिछला) दृष्टि से दिखने में आएगी नहीं - ऐसी सिलाई मैं कर दूँगा। सिद्धांत में उतारना है हों! आहाहा! अच्छा! (तो) काटा, सिलाई करके कुर्ता दे दिया। (कुर्ता) पहना, अच्छा! देखा उसने, सिलाई अच्छी इतनी की है कि सिलाई करने पर भी वो दो (टुकड़ा) जुदा दिखता नहीं है; एक दिखता है, एक। एक है नहीं! एक है नहीं! टुकड़ा होने के बाद सर्वथा एक नहीं होता है और सर्वथा भिन्न भी नहीं रहता है। सर्वथा भिन्न रहे तो कुर्ता नहीं! आहाहा!

तो ऐसा दृष्टांत है। ऐसे ज्ञायक की ओर दृष्टि जाती है तो, दृष्टि और दृष्टि का विषय भिन्न होने पर (भी), कथंचित् अभिन्न ऐसा ज्ञेय होता है, उसका नाम **उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** है। आहाहा! त्रिकाल सत् और क्षणिक सत्, हैं तो सत् दो; तो भी इतना अनुसंधान हो जाता है कि एक ही सत् (है), पदार्थ की अपेक्षा से एक सत् है (और) नय की अपेक्षा से दो सत् जुदा-जुदा हैं। ऐसा ज्ञान में एक समय में अक्रम में आ जाता है। 'रहित पूर्वक सहित' का ज्ञान होता है। एकांत से रहित (माने) तो सांख्यमती है, ऐसा है नहीं। सर्वथा सहित (माने) वो भी ऐसा स्वरूप नहीं है। मगर कथंचित् रहित और सहित का ज्ञान अनुभव के बाद होता है। पहले तो सर्वथा लेना! आहाहा! परिणाम मात्र से मेरा आत्मा सर्वथा भिन्न (है)।

एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा (समयसार गाथा ५)। वहाँ से शुरू हुआ (कि) अनंत गुण से एकपना और परिणाम मात्र से विभक्त-जुदा है आत्मा। ऐसा दृष्टि में आने से, दृष्टि द्रव्य में व्याप जाती है, फैल जाती है। दृष्टि और दृष्टि का विषय, भिन्न होने पर भी एक नय की अपेक्षा से अभिन्न हैं। एक नय की अपेक्षा से वो परिणाम द्रव्य से अभिन्न है, और ध्येय की अपेक्षा से भिन्न है। भिन्न भी है और अभिन्न भी है। और अभिन्न का विकल्प गया और भिन्न का विकल्प गया, जैसा है वैसा श्रुतज्ञान में आ

जाता है। आहाहा! ऐसी अनुभव की process (विधि) है।

तो **अनादि बंधपर्याय** की दृष्टि से देखो तो.... सवा नौ का टाइम है व्यवस्था की अपेक्षा से। **अनादि बन्धपर्यायके समीप जाकर एकरूपसे अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं** नव का भेद दिखता है, कभी? अजीव का लक्ष करने से नव का भेद दिखता है (मगर) जीव का लक्ष करने से नव का भेद दिखता नहीं है। आहाहा! इसमें लिखा है इसका अर्थ है। **अनादि बन्धपर्यायके समीप जाकर** यानि आत्मा के विमुख होकर, जब अजीव के सन्मुख जाता है परिणाम तब **एकरूपसे अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ है**। पर्याय है, नवतत्त्व है; नहीं है, ऐसा (नहीं है)। मगर नवतत्त्व के भेद का जन्म पर के लक्ष से होता है, स्व के लक्ष से होता नहीं है। आहाहा!

और एक जीवद्रव्यके देखो! आहाहा! भेदज्ञान की बाँसुरी बजती है। और अजीव के सन्मुख देखने पर तो नवतत्त्व का भेद दिखता है। ये जीव है, ये अजीव है, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष। मगर एक जीवद्रव्य स्वभाव जो आत्मा का है परिणाम मात्र से भिन्न, नवतत्त्व से जो भिन्न है, ऐसा **एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप**, अंतर्मुख होकर ज्ञायक के सन्मुख जब परिणाम जाता है, **जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं,** दिखाई देते (नहीं हैं)। अभेद में भेद दिखता नहीं है क्योंकि भेद है ही नहीं और अनंत गुण तो अंदर हैं, तो भी अनंत गुण में गुणभेद दिखता (नहीं है)। पर्याय तो है ही नहीं इसलिए दिखती नहीं है और अनंत गुण तो हैं मगर एक भी गुण पर दृष्टि नहीं है (इसलिए) गुणी दिखता है, गुण दिखता नहीं है।

गुणभेद भी लक्ष में नहीं आता है और पर्याय तो है ही नहीं अंदर (तो) लक्ष में कैसे आवे? आहाहा! **स्वभावके समीप जाकर अनुभव** करता है। विकल्प की बात नहीं, शब्द की बात नहीं, भाषा की बात नहीं, धारणा की बात नहीं। वो मानसिकज्ञान का विषय नहीं है। मानसिकज्ञान में निर्णय होता है मगर मानसिकज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आता (नहीं है)। परोक्ष अनुभूति मन में होती है। प्रत्यक्ष अनुभूति ज्ञान में होती है। आहाहा!

समीप जाकर अनुभव करनेपर वे यानि नवतत्त्व, जो अजीव का संबंध से आत्मा को देखता है, कर्म के संबंधवाला दिखाई देता है, देह के संबंधवाला दिखाई देता है ऐसा नवतत्त्व (का) भेद दिखता था। अभी अंतर्मुख आत्मा में जाता है उपयोग। लक्ष अंदर में जाता है, लक्ष फिर गया। लक्ष फेरे फेर है। लक्ष फेरे (फेर है)। लक्ष फिरता है। ज्ञेय फिर गया! ज्ञेय फिर गया! जो नवतत्त्व ज्ञेय था ज्ञान का, वहाँ इंद्रियज्ञान का जन्म होता था, और क्रम-क्रम से नवतत्त्व का ज्ञान होता था। (अब) वो लक्ष छूट गया, ज्ञेय बदल गया। पर्याय जो ज्ञेय थी, अभी सामान्य द्रव्य ज्ञेय बनता है उपयोग में। पर्याय ज्ञेय बनती थी वहाँ तक इंद्रियज्ञान था, आकुलता का कारण था वो तो। अभी ज्ञेय बदल गया, ज्ञेय बदल गया तो ध्येय भी (बदल गया)। और ध्येय बदला तो ध्यान भी बदल गया, धर्मध्यान प्रगट होता है। ज्ञेय बदलने की बात है। ये (परज्ञेय) जानने में आता है, ये (परज्ञेय) जानने में आता है, इस जगत में ये (पर) ज्ञेय हैं, ये आत्मा ज्ञेय नहीं हैं? (अरे!) आत्मा ही ज्ञेय है! आहाहा!

जैसे, क्या बात कहूँ? जैसे जगत में कोई निमित्त नहीं है - आज से बीस साल पहले कहा था राजकोट में। जगत में कोई निमित्त नहीं है, सब उपादान हैं। आहाहा! ऐसी अध्यात्म की पराकाष्ठा में

जिसको अनुभव करना हो, जिसको अनुभव करना हो - शर्त ये है; तो इस जगत में एक ही ज्ञेय है, दूसरा ज्ञेय है नहीं। एक बार तो आ जा। बाद में सब ज्ञेय हैं ऐसा ज्ञान, व्यवहार हो जाता है; मगर निश्चय के बिना व्यवहार होता (नहीं है)।

समीप जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं, नवतत्त्व का भेद, अभेद में दिखता नहीं है। **असत्यार्थ हैं; (वे जीवके एकाकार स्वरूपमें नहीं हैं;)** देखो! पंडितजी ने कोष्ठक डाला। जयचंद पंडित जी हो गए, जयपुर में। उन्होंने अनुवाद किया है, संस्कृत का ढूँढ़ारी भाषा में। बाद में हिन्दी (और) बाद में गुजराती (हुआ)।

वे जीवके एकाकार स्वरूपमें वो अनेक परिणाम **नहीं हैं;** आहाहा! ये अनेकाकार का ज्ञान होने पर भी वो एकाकार रहता है। अनेकाकार ज्ञान होता है तो क्या आत्मा अनेकाकार होता है? तीन काल में होता नहीं है। अनेकाकार ज्ञान तो होता है मगर एकाकार रहता है वो। **(वे जीवके एकाकार स्वरूपमें नहीं हैं;) इसलिये इन नव तत्त्वोंमें**, देखो! इन नवतत्त्व में **भूतार्थनयसे एक जीव ही प्रकाशमान है।** आहाहा! नवतत्त्व कोई दिखता (नहीं है)।

भावार्थ में तो वो कहेंगे। देखो! भावार्थ में देखो। आहाहा! भावार्थ भी ५, ६, ७, पंक्ति देखो। कि **जब शुद्धनयसे जीव-पुद्गलका निजस्वरूप भिन्न भिन्न देखा जाये तब**, तब क्या है? जीव और पुद्गल से भिन्न, अकेला जीव को देखने में आवे तो क्या है? **तब वे पुण्य, पापादि सात तत्त्व कुछ भी वस्तु नहीं हैं;** अवस्तु है? कि हाँ! अवस्तु है। आहाहा! जब वो (सात तत्त्व) वस्तु दिखती है तब ये (आत्मा) वस्तु दिखाई नहीं देगी। प्रभु! तू ख्याल तो कर कि क्या बात है। सब व्यवहार का निषेध करते हैं, व्यवहार का निषेध करते हैं। अरे! व्यवहार का जन्म होता है। तू निषेध करता है, निश्चय और व्यवहार का तू निषेध करता है, ज्ञानी व्यवहार का निषेध करता नहीं है। उसको व्यवहार का ज्ञान होता है, व्यवहार का पक्ष नहीं होता है। निश्चय का ज्ञान होता है तो व्यवहार का - नवतत्त्व का ज्ञान हो जाता है मगर नवतत्त्व के सन्मुख नहीं है उपयोग।

परद्रव्य से पराङमुख है साधक सविकल्पदशा में भी, निर्विकल्पध्यान में तो पराङमुख है (ही)। नवतत्त्व परद्रव्य हैं, उससे सविकल्पदशा में भी ज्ञान पराङमुख रहता है क्योंकि ज्ञेयाकर अवस्था में भी ज्ञायक जानने में आता है। उस भेद का लक्ष नहीं है इसलिए जानने में आता (नहीं है)। जनित (जानने में आ) जाता है मगर उसको जानता नहीं है।

एक जीव ही प्रकाशमान है। आहाहा! उसमें अनुभव की, सम्यग्दर्शन की विधि है। सम्यग्दर्शन की विधि इसमें लिखी है। **इसीप्रकार अन्तर्दृष्टिसे देखा जाये तो :- ज्ञायकभाव जीव है** देखो! ये एक ऊपर पढ़ने का रह गया थोड़ा।

भावार्थ: **निमित्त-नैमित्तिकभाव मिट गया तब जीव-पुद्गल ... कोई वस्तु (पदार्थ) सिद्ध ...। वस्तु तो द्रव्य है,** वस्तु तो द्रव्य है, **और द्रव्यका निजभाव**, पारिणामिकभाव द्रव्य के साथ में ही रहता है। ओहोहो! उसका वियोग होता नहीं है। **तथा निमित्त-नैमित्तिकभावका तो अभाव ही होता है,** अरे! निमित्त-नैमित्तिकभाव नहीं मानते हैं? आहाहा! निमित्त-नैमित्तिकभाव अंतर्दृष्टि से देखो तो नहीं है। निमित्त के लक्ष से नैमित्तिक होता है, स्वभाव के लक्ष से नैमित्तिक राग कभी (भी) - तीनकाल में उत्पन्न

होता नहीं है। इसलिए निमित्त-नैमित्तिक संबंध का अभाव हो गया है - ऐसा पंडितजी ने लिखा है, (वो) सही है।

तथा निमित्त-नैमित्तिकभावका तो अभाव ही होता है, आहाहा! **इसलिये शुद्धनयसे जीवको जाननेसे ही सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है। जबतक भिन्न भिन्न नव पदार्थोंको जाने,** ये जीव है, ये अजीव है, ये पुण्य है, पाप है, ये आस्रव, उसका लक्षण, उसका कारण-कार्य, उसका फल। आहाहा! वहाँ चिपक गया। वहाँ चिपक गया भेद में, भेद में से हटता ही नहीं है। भेद का ज्ञान ज्यादा होने पर पंडित होता है मगर ज्ञानी होता (नहीं है)। भेद का थोड़ा ज्ञान हो भले, मगर अभेद का ज्ञान होता है तो सम्यग्दर्शन हो जाता है। आहाहा!

इसलिये शुद्धनयसे जीवको जाननेसे ही सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है। इसका अर्थ ये नहीं कि ये अपना महाविद्यालय बंद कर देना - ये बात नहीं है। ऐसी बात नहीं है। ऊपर-ऊपर जाने की बात है, नीचे उतरने की बात (नहीं है)! जो भेद में अटकता है उसको वहाँ से भेद की दृष्टि छुड़ाकर अभेद में लाने का प्रयोजन है। **इसलिये शुद्धनयसे जीवको जाननेसे ही सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति हो सकती है। जबतक भिन्न भिन्न नव पदार्थोंको जाने, और शुद्धनयसे आत्माको न जाने** शुद्धनय से अंतर्मुख होकर आत्मा को जाने नहीं **तबतक पर्यायबुद्धि,** मिथ्याबुद्धि **है॥१३॥**